12

माया

ध्यान दें:

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही होता है, तमेव विदित्वातिमृत्युमेति (उसको जानकर मृत्यु को पार करता है) इत्यादि वचनों से श्रुतियों में ब्रह्मज्ञान से ही सभी प्रकार की दु:खों की निवृत्तिरूप मोक्ष का प्रतिपादन किया गया है। श्रुतियों में बार बार 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिवाक्यों के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। 'आत्मा वारे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य' (श्रवण मनन निदिध्यासन के द्वार आत्मा को देखना चाहिए) इस प्रकार की श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म लाभ के उपाय प्रतिपादित किये गये हैं। इसलिये ब्रह्म के स्वरूप के विषय में ही आलोचन उपयुक्त होता है तो फिर कहते है की माया के विषय में आलोचन क्यों किया जाए, यह प्रश्न स्वभाविक रूप से उत्पन्न होता है। अद्वैतवेदान्त में ब्रह्म ही निर्गुण निर्विशेष नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला एक तथा अद्वितीय होता है। जगत् के जड होने के कारण ब्रह्म के अतिरिक्त द्वितीय के अभाव से किस प्रकार से निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति होती है यह प्रश्न जिज्ञासुओं के मन में उत्पन्न होता है। इसलिए अद्वैतवेदान्त में जगत् के उपादान के स्वरूप में माया को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार से माया श्रुति तथा स्मृति के द्वारा सिद्ध है। "योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसीति" (जो हमें अविद्या से पार तारती है), "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" (माया को प्रकृति समझना चाहिए तथा मायापति को महेश्वर), "इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप ईयते" (इन्द्र माया के द्वार पुरुष रूप में देखा जाता है) इत्यादि श्रुतियों में "मम माया दुरत्यया" (मेरी माया को समझना कठिनतम है), "नाहं प्रकाश: सर्वस्य योगमाया समावृत:" (योगरूप माया ढका हुआ होने के कारण में सभी का प्रकाश नहीं हूँ), "अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव" (अज्ञान के कारण ज्ञान ढका हुआ है जिससे जन्तु मोहित हो जाते हैं) इस प्रकार से श्रीमद्भागवद् के वचनों में माया के सत्त्व तथा माया युक्त ईश्वर का ही जगत् के कर्तृत्व रूप में वर्णन है।

बद्धजीव माया से निर्मित इस प्रपञ्च में अन्त: करण देह इन्द्रियों के द्वारा एक का अनुभव करता हुआ स्वयं कर्ता तथा भोक्ता होता है और सुखदु:ख का अनुभव करता है। जीव स्वरूप से तो ब्रह्म के समान ही होता है। माया के कारण ही उसका स्वरूप अपरोक्ष नहीं होता है। श्रवणमनन निदिध्यासन के द्वारा अखण्डाकार चित्त की वृत्ति के उदय से माया की निवृत्ति होने के कारण जीव स्वयं के स्वरूप का ज्ञान करता है तथा स्वयं के द्वारा सभी प्रकार के बन्धनों से छूट जाता है। लेकिन जब तक निवृत्त करने वाली माया के स्वरूप को जानता है तब तक ही उसका निवृत्ति रूप उपाय वाल ज्ञान सम्भव होता है। इसलिए माया का भी लक्षण प्रमाणों के द्वारा प्रतिपादन अद्वैत शास्त्रों में दिखाई देता है। इस पाठ में माया का लक्षण प्रमाणों के द्वारा तथा उसके विषय में अन्य विचारों का भी उपस्थापन किया जा रहा है।

पाठ-12

माया

ध्यान दें:

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- अद्वैत वेदान्त में माया के आलोचन की आवश्यकता को समझ पाने में;
- माया के शब्दार्थ को जानने में;
- तत्वप्रदीपिका में कहे गये माया के लक्षण को समझ पाने में;
- माया का अनादित्व भावरूपत्व तथा ज्ञान निवृति का विचार कर पाने में;
- माया के अन्यलक्षण को जान पाने में;
- माया का त्रिगुणत्मकत्व तथा अनिर्वचनीयत्व विषय को समझने में;
- माया के सत्त्व होने के क्या-क्या प्रमाण हैं को जान पाने में;
- माया तथा अविद्या भिन्न है अथवा अभिन्न इस विषय को जान पाने में;
- माया एक है अथवा अनेक इस विषय को जान पाने में;
- माया का क्या आश्रय है तथा माया का कौन-सा विषय है को जान पाने में;
- माया किस प्रकार से जगत् का उपादानत्व है इस विषय को जानने में;

12.1) मायाशब्दार्थ

मा माने धातु से 'माछाससिभ्यो य:' इस सूत्र से य प्रत्यय करने पर माय इस प्रकार स्थिति होने पर यह माया शब्द सिद्ध होता है। मीयते अपरोक्षवत् प्रदर्श्यते अनया इति माया, माति विश्वं यस्याम् इति माया, मीयते अनया संसार इति माया, मीयते निर्मीयते जगत् यया सा माया, मीयते ज्ञायते आत्मनि अध्यस्तं जगत् यया सा माया इत्यादय: (अपरोक्ष रूप से जिसके द्वारा यह संसार मापा जाता है, जो इस संसार को मापती है तथा बनाती है तथा जिसके द्वारा यह संसार मापा जाता है तथा बनाया जाता है और जिसके द्वारा यह आत्मा में इस जगत् का ज्ञान होता है वह माया कहलाती है। इस प्रकार से हम माया शब्द की व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर के माया शब्द के अर्थ का प्रतिपादन कर सकते हैं। श्रुति तथा स्मृतियों में माया अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, मिथ्याज्ञान, अव्यक्त, अव्याकृत, महासुषुप्ति, तथा अक्षर इत्यादि शब्दों के द्वारा जानी जाती है।

12.2) मायालक्षण

माया के लक्षण को विचारते समय चित्सुखाचार्य ने तत्त्वप्रदीपिका में कहा है

अनादिभावरूपं यद्विज्ञानेन प्रलीयते।
तदज्ञानमिति प्राज्ञा लक्षणं सम्प्रचक्षते॥ इति।

मधुसूनसरस्वती ने अद्वैत सिद्धि ग्रन्थ में चित्सुखाचार्य के द्वारा कहे गये माया के लक्षण को आधार मानकर के यह माया का लक्षण किया है- अनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वम् इति। अर्थात् उन्होंने ने कहा है कि- यह अविद्या क्या है जो अनादिभावरूपत्व होने पर ज्ञान का निवर्त्य करवाती है वह अविद्या है।

ध्यान दें:

12.3) लक्षणस्थ पदों का सार्थक्य

परवर्ती ज्ञान के उदय होने पर पूर्ववर्ती ज्ञान का विनाश होता है। पूर्ववर्ती ज्ञान भाव रूप में होता है तथा उससे उत्तरवर्ती ज्ञान उसके नाश के रूप में होता है। लक्षण में अनादि शब्द उपादान होने से भावरूप में पूर्वोत्पन्नज्ञान में उसके अनादित्व होने से अतिव्याप्ति नहीं होती है। पूर्व ज्ञान के अभाव में अतिव्याप्ति के वारण के लिए यह पद भाव रूप में कहा गया है। नहीं तो पूर्व ज्ञान के अनादित्व होने से ज्ञाननिवर्त्यत्व में माया लक्षण की अतिव्याप्त होती है। लक्षण में ज्ञाननिवर्त्यत्वपद उपदान के द्वारा अनादि भावरूप आत्मा में माया के लक्षण पदों की आत्मा का ज्ञाननिवर्त्यत्वाभाव होने से अतिव्याप्ति नहीं होती है।

अब जो पदार्थ अनादि तथा भाव रूप होते हैं, उनका किस प्रकार से निवर्त्यत्व हो। क्योंकि अनादि भावरूपत्व आत्मा का बाध्यत्व अद्वैत वकदान्तियों के द्वारा नहीं होता है। इस प्रकार से अविद्या का भी अनादित्व से तथा भावरूपत्व से निवर्त्यत्व नहीं होता है। इसलिए यहाँ पर अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा कहा गया है कि अनादि तथा भावपदार्थ तो उसके भाव नहीं होते हैं इस प्रकार से अनादित्व तथा भाव रूपत्व के द्वारा बाधा के अभाव का सहचार नियम नहीं होता है। काले घट के पकने से लालवर्ण की उत्पत्तिहोने पर पृथ्वी में परमाणुगत अनादि भावरूप श्यमावर्ण का नाश तो पूर्वपक्ष के द्वारा भी साक्षात् देखा ही जाता है। इसलिए अनादिभावरूपत्व भी माया का ज्ञान निवर्त्यत्व होता है।

12.4) अविद्या का अनादित्वविचार

अविद्या ही अनादि है। अनादि से तात्पर्य है जिसका आदि नहीं हो तथा जो उत्पत्ति रहित हो। वह विद्या भले ही ब्रह्म में आरोपित है फिर भी प्रथम आरोप के दुर्निरुप्यत्व से उसका अनादित्व सिद्ध होता है। अविद्या के अनादित्व के विषय मे श्रुतियों में प्रमाण है कि अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामिति। अर्थात् एक अजा (माया) होती है जो लोहित तथा शुक्लवर्ण से युक्त होती है। अद्वैत वेदान्त में प्रसिद्ध अनादि षटक में अविद्या को परिगणित किया गया है।। और चित्सुखाचार्य के द्वारा तत्वप्रदीपिका ग्रन्थ में कहा भी गया है की-

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः।। इति।

अब कहते हैं कि ब्रह्मस्वरूप का आवरक अज्ञान को यदि अनादि माने तो शुक्ति तथा रजत के भ्रमस्थल मे शुक्ति का आवरक अज्ञान तो अनादि नहीं है। क्योकि शुक्ति तो उत्पन्न होती है तो शकत्यवच्छिन्न चैतन्य आवरक अज्ञान भी उत्पन्न होता है इसलिए शुक्ति के सत्त्व होने पर ही उसकी स्थिति होती है शुक्ति के असत्त्व होने पर तो उसका अभाव ही होता है। अद्वैत वेदान्त में मूल अविद्या तथा तूल अविद्या इस प्रकार की दो अविद्या स्वीकार की गई है। मूल अविद्या है ब्रह्माश्रित जगत का कारण तथा ब्रह्म स्वरूप की आच्छादिका होती है। और शुक्ति आदि में परिच्छिन्न भ्रमरजाति हेतु वाली अविद्या तूल अविद्या कहलाती है। तूल अविद्या का भी सादित्व हमेशा अङ्गीकार करना चाहिए। इस प्रकार से अविद्या का अनादित्व स्वीकार करने पर तूल अविद्या में अव्याप्ति होती है। यहाँ पर अद्वैत वेदान्त में कहा गया है कि शुक्ति ही शुद्ध चैतन्य में अद्यस्ता है। तथा रजत की उपादान भूता शक्ति अवच्छिन्न अविद्या ही अनादि चैतन्य के आश्रित हैं। इसलिए वह भी अदादि। अतः वेदान्त परिभाषा में कहा गया है कि अविद्या सभी प्रकार के कार्य की भी स्वोपादानाविद्याधिष्टानाश्रितत्व नियम से होती है। उत्पन्न शुक्ति अज्ञान की अवच्छेदिका है न कि अज्ञान का विषय। इस प्रकार जड़ अज्ञान का विषय तथा आश्रय नहीं होता है। जैस आकाश का अवच्छेदक घटपटादि में भी घटान्तवर्ती आकाश घटाकाश पटान्तवर्ती आकाश

ध्यान दें:

पटाकाश कहलाता है। उसी प्रकार अज्ञान की अवच्छेदिका शुक्ति तथा शुक्ति अवच्छिन्न अज्ञान ही शुक्त्यज्ञान कहलाता है। लेकिन अज्ञान शुक्ति में आश्रित नहीं है अपितु अज्ञान का आश्रय ही शुद्ध चैतन्य होता है। इसलिए शुक्तिरूप कल्पित उपाधिकरण से ही मूलाविद्या तथा तूलाविद्या का भेद कल्पित होता है। कल्पित भेद को अङ्गीकार करके तूलाविद्या का सादित्वप्रतिपादन नहीं होता है। इसलिए तूलाविद्या अनादि होती है न कि व्याप्ति का लक्षण।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. जगत् के उपादानत्व में माया को किस प्रकार से अङ्गीकार किया गया है?
2. माया की सिद्धि में किन श्रुतियों का प्रमाण है?
3. माया के पर्यायवाची शब्द कौन-कौन से हैं?
4. माया की सिद्धि में किन स्मृतियों का प्रमाण है?
5. माया पद की व्युत्पत्ति क्या है?
6. अनादिभावत्वरूप होने पर ज्ञान निवर्त्यत्व होता है इस लक्षण में अनादि पद किस लिए जोड़ा गया है?
7. चित्सुखाचार्य द्वारा प्रतिपादित माया का लक्षण क्या है?
8. चित्सुखाचार्य के द्वारा कहे गये लक्षण में भावरूप पद का क्या अभिप्राय है?
9. अद्वैत वेदान्त सम्मत छः अनादि कौन-कौन से हैं?
10. मूलाविद्या तथा तूला विद्या क्या होती है?
11. शुक्ति अज्ञान का विषय किस प्रकार से नहीं होता है।

12.5) अविद्या का भावरूपत्व

अविद्या के भावरूपत्व से तात्पर्य अभावविलक्षणत्वमात्र ही है। न की अविद्या विद्या के अभाव को कहते है। अविद्या के भावरूपत्व होने पर भावरूप जगत का उपादान अविद्या नहीं होती है। इस प्रकार अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती है ऐसा आचार्य शङ्कर ने बार बार प्रतिपादित किया है। इसलिए अविद्या की भाव रूपता अङ्गीकार नहीं कर सकते हैं। अज्ञान के अभावत्व का प्रतिपादन करते हुए पूर्वपक्षी के द्वारा यह प्रश्न किया गया है की अज्ञान घटपटादि विशेष ज्ञान का अभाव होता है अथवा ज्ञानमात्र का अभाव होता है। तब कहते हैं की अज्ञान घटादि विशेष ज्ञान का अभाव नहीं है। क्योंकि जैसे मै मूढ हूँ तथा कुछ भी नहीं जानता हूँ इत्यादि स्थलों में भी विशेषविषयरहित अज्ञान का भी अनुभव होता है। तथा अज्ञान मात्र के अभाव को भी नहीं कहते हैं क्योंकि अभाव के लिए धर्मी तथा प्रतियोगी को ज्ञान की अपेक्षा होती है। इसलिए धर्मीप्रतियोगी ज्ञान के विद्यमानत्व से ज्ञानमात्र का अभाव कभी भी सम्भव नहीं होता है। 'माया को प्रकृति जानना चाहिए' इस प्रकार की श्रुतियों में माया के जगत् उपादानत्व कथन से माया का अभाव रूपत्व श्रुतियों के द्वारा सिद्ध नहीं होता है। इस प्रकार से फिर अविद्या की भावरूपता को भी अङ्गीकार नहीं कर सकते है। अविद्या का भावरूपत्व होने के कारण वह (भावरूपत्व) जगत् में विद्यमान अभाव पदार्थों का उपादान नहीं होता है। इसलिए अविद्या का भाव तथा अभाव दोनों लक्षण विलक्षण होते हैं अतः भाव तथा अभाव दोनों के द्वारा अनिर्वचनीयत्व अविद्या की सिद्धि होती है।

ध्यान दें:

12.6) अविद्या का ज्ञाननिवर्त्यत्व

न विद्या अविद्या, जो विद्या नहीं है वह अविद्या है यहाँ पर विद्या का अत्यन्ताभाव नहीं है अपितु अन्योन्याभाव है। यहाँ पर नञ् समास का विरोधित्व अर्थ है। इसलिए विद्या की विरोधिनी तथा विद्या की निवर्त्या अविद्या कहलाती है। तब प्रश्न करते है कि सोपाधिक भ्रम स्थलों में तथा रक्त स्फटिकादि में भी ज्ञानोदय होने पर भ्रम की निवृत्ति के अभाव से तथा ब्रह्मज्ञान के जीवन मुक्त दशा में जगत् के विज्ञान से अविद्या का ज्ञाननिवर्त्यत्व नहीं होता है। यहाँ पर उत्तर देते हुए कहते हैं कि रक्तस्फटिक स्थलों में जपाकुसुमरूप की उपाधि के प्रतिबन्धक रूप विद्यमान होने से जीवनमुक्तदशा में प्रारब्धकर्म प्रतिबन्धक के रूप में सत्व होने से विलम्ब पूर्वक स्वच्छ स्फटिक आज्ञा की तथा ब्रह्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति होती है। लेकिन प्रतिबन्धक कारण से विलम्ब के सत्य होने अज्ञान का ज्ञान निवर्त्यत्व नहीं होता है इस प्रकार की कोई अनुपपत्ति होती है। अविद्या का ज्ञान निवर्त्यत्व होने पर तरति शोकमात्मवित्, तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति इस प्रकार से श्रुतियों में कहा गया है "ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्। इस प्रकार स्मृतियों में प्रमाण है, इसलिए अनादि सत्व होने पर तथा भावरूपत्व होने पर ज्ञान का निवर्त्यत्व होता है यह अज्ञान का निर्दुष्ट लक्षण है।

अविद्या लक्षण में ज्ञान निवर्त्यपद का साज्ञात ज्ञाननिवर्त्यत्व अर्थ होता है। उसके द्वारा अविद्या ही लक्षित होती है, तथा ज्ञान साक्षात् अज्ञान का निवर्तक होता है। इसलिए अविद्या का लक्षणान्तर होता है ज्ञानत्व के द्वारा ज्ञाननिवर्त्यत्व होना। पूर्वज्ञान का उत्तर ज्ञान के द्वारा निवृतत्व होने से पूर्वज्ञाने लक्षण की अतिव्याप्ति हो तो ऐसा भी नहीं है क्योंकि उत्तरज्ञान के विरोधित्वगुणत्व के द्वारा पूर्वज्ञान का ज्ञाननिवर्त्यत्व होता है न की ज्ञानत्व के द्वारा। यहाँ पर लक्षण में अनादित्व तथा भावत्व की अपेक्षा नहीं है इसलिए मधुसूदनसरस्वती के मत मे यह लक्षणान्तर कहलाता है।

12.7) माया का दूसरा लक्षण

माया का दूसरा लक्षण तो भ्रमोपादनत्व होता है। भ्रम का उपादान ही माया होता है। लेकिन भ्रम का उपादान ब्रह्म भी होता है। अखिलप्रपञ्च का विवर्तोपादानकारण ब्रह्म ही होता है। इसलिए यहाँ पर लक्षण में परिणामित्वेन अचेतनत्वेन (परिणामित्व से तथा अचेतनत्व से) ये दोनों पद भी जोड़ना चाहिए। उस अचेतनञ्व के द्वारा भ्रमोपादनत्व होता है तथा परिणामित्व के द्वारा भ्रमोपादनत्व होता है यह माया का लक्षण है। ब्रह्म भ्रम का उपादान होता है परन्तु अचेतन परिणामी नहीं होता है।

निश्चित रूप से अज्ञान ही भाव विलक्षण होता है तथा अभाव विलक्षण पूर्व में प्रतिपादित किया जा चुका है। शुक्ति रजत रूप भ्रम भी भावविलक्षण तथा अनिर्वचनीय होता है। इसलिए अज्ञान का उपादानत्व तथा भ्रम उपादेयत्व नहीं हो, भाव का ही उपादानत्व तथा उपादेयत्व होता है। यहाँ पर कहते हैं कि उपादानत्व के प्रति तथा उपादेयत्व के प्रति भावत्व हेतु नहीं होता है, लेकिन कार्य में जो कारण अन्वित होता है उसका उपादानत्व होता है, जो सादि है तथा उसका उपादेयत्व सिद्ध होता है। जिस प्रकार से घटकार्य में मृत्तिका अन्वित होकर रुकती है इसलिए मिट्टी घट का उपादान है तथा घट आदि है इसलिए घट उपादेय है। यहाँ पर भाव पदार्थ ही उपादान तथा उपादेय होता है तो ऐसा नियम भी नहीं है। क्योंकि ब्रह्म भाव पदार्थ भी किसी का परिणामी उपादानकारण तथा उपादेय होता है।

निश्चितरूप से जब शुक्ति में शुक्ति का ज्ञान होता है तब शुक्ति विषयक अज्ञान का निवारण होता है, वह अज्ञान भ्रम उत्तपन्न करने वाला नहीं होता है। इसलिए उसके भ्रमोत्पादन के अभाव से लक्षण की वहाँ पर अव्याप्ति नहीं होती है। फलोपधायकत्व से तथा स्वरूपयोग्यत्व से कारण दो प्रकार का होता है। जिस प्रकार से घट की उत्पत्ति में घट बनाने की जगह पर विद्यमान दण्ड कार्य का जनक होता है

ध्यान दें:

इसलिए वह फलोपधायक कहलाता है। लेकिन जंगल में विद्यमान दण्ड भी घटनिर्माण के कारण में समर्थ है, इसलिए जंगल में विद्यमान दण्ड में योग्यता तो है ही। इसी प्रकार प्रकृत शुक्ति ज्ञान के द्वारा निवृत्त अज्ञान का भ्रमजनकत्व अभाव होने पर भी उसमें भ्रमोत्पान की योग्यता तो होती ही है। इसलिए वहाँ पर भी अचेतनत्व तथा भ्रमोत्पादन लक्षण साथ में ही चलते हैं जिससे यहाँ पर अव्याप्ति नहीं होती है। इस प्रकार से अचेतनत्व परिणामित्व के द्वारा भ्रमोत्पादनत्व यह निर्दिष्ट माया का लक्षण सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. अविद्या के भावरूपत्व का तात्पर्य क्या होता है?
2. अविद्या पद से विद्या का अभाव वाला अर्थ यहाँ पर क्यों नहीं ग्रहण किया गया है?
3. वस्तुगत अविद्या का भावरूपत्व होता है अथवा अभावरूपत्व?
4. अविद्या यहाँ पर नञ् समास का क्या अर्थ है?
5. अविद्या के ज्ञाननिवर्त्यत्व में श्रुतियों का क्या प्रमाण है।
6. अविद्या के ज्ञाननिवर्त्यत्व पद का क्या तात्पर्य है।
7. ज्ञान किस रूप के द्वारा अज्ञान का निवर्तक होता है।
8. माया का अपर लक्षण क्या है?
9. भ्रमोत्पादनत्वम् इस प्रकार से माया के लक्षण को करने पर यहाँ पर किस प्रकार से अतिव्याप्ति होती है तथा किस प्रकार से उसका निवारण होता है?
10. शुक्ति में शुक्ति के ज्ञान के समय शुक्ति विषयक अज्ञान किस प्रकार से भ्रमोत्पादकत्व होता है?

वेदान्तसार के रचयिता सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा सभी आचार्यों के लक्षणों को मिलाकर के अज्ञान का लक्षण इस प्रकार से अपने ग्रन्थ में लिखा है - अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित् इति।

इस प्रकार से ज्ञानविरोधित्व तथा भावरूपत्व पूर्व में आलोचित कर दिये गये हैं। सत् तथा असत् के द्वारा अनिर्वचनीयत्व तथा त्रिगुणात्वकत्वों का अभी विचार किया जाएगा।

12.8) अविद्या अनिवर्चनीय है

अज्ञान सत् नहीं होता है। कालत्रय का बाधक ही सत् कहलाता है। जिस प्रकार से घटज्ञान के बाद घटविषयक अज्ञान बाधित होता है उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान के बाद ब्रह्म विषयक अज्ञान बाधित होता है। इस प्रकार से अज्ञान असत् नहीं होता है। असत् तो सर्वथा अभाव को कहते हैं जैसे खरगोश के सींग। लेकिन में अज्ञानी हूँ, इस प्रकार से अज्ञान की अपरोक्षप्रतीति होती है, इसलिए अज्ञान असत् नहीं होता है। मिथ्या का कभी भी किसी भी अधिकरण मे ज्ञान नहीं होता है। क्योंकि कोई भी कहीं भी खरगोश के सींग का साक्षात्कार नहीं करता है। इसी प्रकार से अज्ञान भी सत् तथा असत् दोनों प्रकार का नहीं होता है। एक ही धर्म अज्ञान के सत् तथा असत् होने पर दो विरूद्ध धर्मों की स्थिति सम्भव नहीं होती है। इसलिए अज्ञान न तो सत् है और नहीं असत् तथा न सत् तथा असत् दोनों प्रकार का लेकिन वह सत् तथा असत् के द्वारा अनिर्वचनीयत्व है। इसलिए अनिर्वचनीय के लक्षण में कहा गया है।

ध्यान दें:

प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं च यत्।
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवादिनः॥ इति।

(प्रत्येक सद् असद् के द्वार जो विचार पदवी होती है उसे वेदान्तवादी अनिर्वचनीय कहते हैं)

विवेकचूडामणी में भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है कि-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भूतानिर्वचनीयरूपा॥ इति।

(वह सद् भी है असद् के रूप में, दोनों प्रकार है, भिन्न तथा अभिन्न के रूप में दोनों प्रकार की है साङ्ग तथा अनाङ्ग के रूप में दोनों प्रकार की है इस प्रकार से वह माया महान् भूतस्वरूपा अनिर्वचनीया होती है)

12.9) अविद्याया/त्रिगुणात्मक त्रिवृत्तकरण

वह माया तीन प्रकार की होती है। तथा वे लोहितशुक्लकृष्णादि गुण श्रुतियों में प्रतिपादित किये गये है। माया के कार्य तेज, जल तथा पृथ्वी में त्रिवृत्तकरण से समुत्पन्नों में तथा स्थलभूतों में इन तीनों गुणों के सत्व होने उनकी कारणभूत माया भी त्रिगणात्मिका होती है यह सिद्ध होता है। इसलिए वेद में कहा गया है की-

यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य इति।

तीन गुण सत्व, रज तथा तम होते हैं। उसी प्रकार माया का भी त्रिगुणात्मकत्व श्रुतियों में तथा भगवद्गीता में प्रतिपादित किया गया है। जैसे अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम् इति इस प्रकार से श्रुतियों में लोहितशुक्ल तथा कृष्णपद के द्वारा सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों का निर्देश विहित है। और भगवद्गीता में सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः, दैवी ह्येषा गुणमयी, प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः, प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः, य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। इस प्रकार के माया के त्रिगुणात्वकत्व का प्रतिपादन करने वाले वचन सुलभ होते हैं। अज्ञान का कारण त्रिगुणात्मकत्व होने से अज्ञान से समुत्पन्न जगत् भी त्रिगुणात्मक होता है। इसलिए गुणत्रयात्मकत्व तथा माया की अभाव रूपता साथ में नहीं चलती है। भाव पदार्थ के ही गुण होते हैं, न की अभाव के, इसलिए वह माया शृङ्गग्राहिकन्याय से इस प्रकार से प्रदर्शन कर सकती है। इसलिए माया को यहाँ पर विशेष दिया गया है।

12.10) माया की सिद्धि में प्रमाण

माया की सिद्धि में बहुत सारे प्रमाण है, जिस प्रकार से मैं अज्ञ हूँ, तुझको/मुझको या किसी और को नहीं जानता हूँ, मुझ में ज्ञान नहीं है, तुम्हारे द्वारा कहे गये अर्थ को नहीं जानता हूँ। इस प्रकार के अनुभव अविद्या के सत्व में प्रमाण होते हैं। विवरणकार इन उदाहरणों के द्वारा अविद्या के भावरूपत्व की भी प्रतिष्ठापना करते हैं। मैंने सुख पूर्वक शयन किया तथा उस समय का मुझे कुछ भी पता नहीं है। इस प्रकार के सुषुप्ति कालीन अनुभव भी अविद्या के प्रमाण होते हैं। इसी प्रकार मैं अज्ञ हूँ इस प्रकार से कहने पर हम अज्ञान की अभाव रूपता को कह सकते हैं। जैसे में सुखी हूँ इत्यादि में सुख का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। उसी प्रकार मैं अज्ञ हूँ ऐसा कहने पर भी इसे अज्ञान की अभावरूपता नहीं कह सकते हैं। जैसे मैं सुखी हूँ इत्यादि में सुख का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। वैसे ही मैं अज्ञ हूँ इत्यादि में भी अज्ञान के प्रत्यक्ष होने से उसका भावरूपत्व ही अङ्गीकार किया जाता है। भले ही अद्वैत वेदान्तियों के शास्त्र में अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता है। अपितु अभाव अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा ज्ञात होता है।

ध्यान दें:

1. भावरूप ज्ञान की सिद्धि के लिए अनुमान को प्रमाण के रूप में इस प्रकार से उपस्थापित किया जाता है। विवादगोचरापन्न प्रमाणज्ञान कहलाते हैं। ये स्वप्रागभावव्यतिरिक्त- स्वविषयावरण- स्वनिवर्त्य-स्वदेशगत-वस्त्वन्तरपूर्वकं होने योग्य है। अप्रकाशितार्थ के प्रकाशकत्व से अन्धकार में प्रथम उत्पन्न प्रदीप आदि के प्रभाव से, इस प्रकार अनुमान किये जाते हैं। इस ज्ञान से समानाश्रयविषय भावरूप अज्ञान की सिद्धि होती है।

देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्, मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्, तरत्यविद्यां विततताम्, तम आसीत् तमसा गूढम्, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम् बह्वी: प्रजा: सृजमानां सरूपा: (देवात्मशक्ति अपने गुणों के द्वारा निगूढ़ है, माया को प्रकृति जानना चाहिए तथा मायापति को महेश्वर, ज्ञानवान अविद्या से तर जाते है, वह तम गूढ़ था, इस लोहितशुक्लकृष्ण अजा के द्वारा बहुत सारी प्रजा की सृष्टि हुई है, इस प्रकार से श्रुतियों के द्वारा माया के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

अज्ञान की सिद्धि में दृष्टार्थापत्ति प्रमाण होता है। ब्रह्म में आरोपित मिथ्याभूत अहङ्कार का शुक्ति का में मिथ्याभूत रजत का मिथ्याभूत किसी उपादान की कल्पना करनी चाहिए। यदि उपादान सत्य है तो कार्य के भी सत्य होने से कार्य का बाध नहीं होता है। इस मिथ्याभूत उपादान के सादित्व में इस के भी किसी उपादान की कल्पना करनी चाहिए। इसलिए मिथ्याभूत यह उपादान अनादि है इस प्रकार से कल्पना करनी चाहिए। इसलिए जो अनादि स्वयं मिथ्या मिथ्याभूतकार्योपादान तथा आत्मसंबंधी उस ज्ञान की कल्पना की जाती है। भले ही उस प्रकार के कारण के बिना मिथ्या अध्यास नहीं होता है। अज्ञान के उपादानत्व से उसके भावरूपत्व की सिद्धि होती है।

अज्ञानसिद्धि में श्रुतार्थापत्ति प्रमाण है। इसलिए आत्मवान् शोक को तर जाता है, इस प्रकार की श्रुतियों में आत्मज्ञानिवर्त्य बन्धहेतुयुक्त शोकोपलक्षित अज्ञान का अस्तित्व ख्यापित होता है। अज्ञानरूप निवर्त्य की सिद्धि के बिना अज्ञान की निवृत्ति का निरूपण नहीं कर सकते है। इसलिए यहाँ पर अज्ञान निर्विवाद सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्ना 12.3

1. वेदान्तसार कृत अज्ञान का लक्षण क्या है?
2. अज्ञान किस प्रकार से सत् होता है तथा किस प्रकार से असत् होता है?
3. अज्ञान का अनिर्वचनीयत्व किस प्रकार होता है?
4. अविद्या में विद्यमान गुणत्रय कौन-कौन से होते हैं?
5. माया में प्रत्यक्ष प्रमाण किस प्रकार से होता है?
6. माया की सिद्धि में अनुमान किस प्रकार से होता है?
7. माया कि सिद्धि में प्रमाणभूत श्रुतियाँ कौन-कौन सी है?
8. अज्ञान की सिद्धि मे दृष्टार्थापत्ति क्या है?
9. अज्ञान की सिद्धि में श्रुतार्थापत्ति क्या है?

ध्यान दें:

12.11) माया तथा अविद्या में भिन्नत्व होता है अथवा अभिन्नत्व

किन्हीं के मत में माया तथा अविद्या ये दोनों समानार्थक शब्द है। शङ्करभगवत्पाद के द्वारा माया तथा अविद्या के पर्यायत्व से ही प्रयोग विहित होता है। इसलिए ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के चतुर्थपाद के तीसरे तदधीनत्वादर्थवत् इस सूत्र में भगत्पादशंकराचार्य के द्वारा लिखा गया है "अविद्यात्मिका हि सा बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्तिः... तदेतदव्यक्तं...क्वचिन्मायेति सूचितम् मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् इति मन्त्रवर्णात्, अव्यक्ता हि सा माया, तत्त्वान्यत्वनिरूपणस्याशक्यत्वात"

(अविद्यात्मिका वह बीजशक्ति अव्यक्त से निर्देश्य परमेश्वराश्रय मायामयी महासुषुप्ति होती है, वह अव्यक्त माया रूप में सूचित होती है। माय को प्रकृति जानना चाहिए तथा माया पति को महेश्वर, इस प्रकार के मन्त्रों के वर्णों से तत्वान्यत्वनिरूपण के अशक्यत्व से वह अव्यक्त ही माया है)

भगवद्गीता में पञ्चम अध्याय के चौदहवें मन्त्र की व्याख्या के अवसर पर शंकराचार्य जी ने कहा है कि स्वभावस्तु स्वो भावः स्वभावः अविद्यालक्षणा प्रकृतिः माया प्रवर्तते 'दैवी हि' (भ. गी. 7। 14)। लेकिन उत्तरवर्ती अद्वैत् वादियों के द्वारा माया तथा अविद्या में भिन्न परिभाषा के द्वारा व्यवहार विहित है।

इसलिए किन्हीं के मत में तो सभी भूतों की प्रकृति ब्रह्माश्रित माया ही है। वह एक ईश्वर की उपाधि है। अविद्या के द्वारा परिच्छिन्न अनन्त जीव की उपाधि होती है। इसलिए माया तथा अविद्या भिन्न भिन्न होती है। तत्वविवेक के प्रकरण में विद्यारण्यस्वामी ने भी माया तथा अविद्या के भेद का प्रतिपादन किया है। उनके मत में रज तथा तम भूत शुद्धतत्वप्रधान वाली को माया कहा गया है। तथा रज एवं तम के द्वारा जो मलिनसत्त्वप्रधाना है वह अविद्या है। माया में चैतन्य का प्रतिबिम्ब ही ईश्वर है, अविद्या में चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीव है, इस प्रकार से उनका मत है। इसलिए उनके द्वारा कहा भी गया है सत्वशुद्धि तथा अविशुद्धि ये गुण वाली माया तथा अविद्या होती है। कहीं पर तो माया तथा अविद्या में भेद ही प्रतिपादित किया गया है कि मूलप्रकृति एक ही होती है वह ही विक्षेप शक्ति के प्राधान्य से माया इस प्रकार से कहलाती है तथा आवरणशक्ति के प्राधान्य से अविद्या कहलाती है। माया ईश्वर की उपाधि होती है तथा अविद्या जीव की उपाधि होती है। आवरण के कारण ही जीव का मैं अज्ञ हूँ इस प्रकार को अनुभव होता है। न की ईश्वर को।

12.12) माया का एकत्व तथा नानात्वविचार

ब्रह्मसूत्र के शाङ्करभाष्य पर वाचस्पतिमिश्र की भामती टीका प्रसिद्ध है। ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य पर पद्मपादाचार्य की पञ्चपरिका टीक तथा उस टीका का विवरणाख्य आख्यान प्रकाशात्मयति के द्वारा प्रकाशित किया गया है। भामतीकार माया का अनेकत्व स्वीकार करते हैं। तथा विवरणकार प्रकाशात्मयति तो माया का एकत्व अङ्गीकार करते हैं।

भामतीकार के मत में तो वह अविद्या एक नहीं होती है जो प्रतिजीव में भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए एकबद्ध जीव की अविद्या की निवृत्ति में सभी का मोक्ष सम्भव नहीं है। इसलिए वाक्यन्वयाधिकरण भाष्य के विचारकाल में कहा गया है कि- यथा हि बिम्बस्य मणिकृपाणादयो गुहा एवं ब्रह्मणोऽपि प्रतिजीवं भिन्ना अविद्या गुहा इति। अविद्या बहुत्व के कारण इन्द्रमायायी के द्वारा पुरु के रूप में देखा जाता है, इस प्रकार से श्रुतियों में सिद्ध भी है।

ध्यान दें:

विवरणकार के मत में तो मूल अविद्या एक ही होती है। इसलिए शास्त्रों अविद्या का एकत्व कहा गया है- अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्, मायां तु प्रकृतिं विद्यात् इत्यादि श्रुतियों में। इन्द्र मायाओं के द्वारा इस प्रकार की श्रुतियों में माया में बहुवचन को माया में स्थित शक्ति बहुत्व की दृष्टि से समझना चाहिए। शुक्तिरजतादि उपादानभूत अज्ञान शुक्त्यादि ज्ञान के द्वारा निवर्तित होते हैं। मूल अविद्या का एकत्व होने पर भी बद्धमुक्त व्यवस्था प्रत्येक जीव की अविद्या के अवस्था भेद को अङ्गीकार करके भी निरन्तर रूप से कही जा सकती है। इसलिए अविद्या ही अंश विशिष्ट होती है। कही पर तो उपाधि में ब्रह्म ज्ञान के होने पर अविद्याया के किसी अंश का निवारण निवर्तित होता है अन्य उपाधियों में अविद्या की स्थिति नहीं होने के कारण सभी की मुक्ति नहीं होती है।

12.13) माया का आश्रयत्व तथा विषयत्व विचार

मैं घट को नहीं जानता हूँ इसके द्वारा घट का ज्ञान ज्ञापित होता है। यहाँ पर अज्ञान का विषय घट होता है,जिससे घट का ही ज्ञान यहाँ पर नहीं है इस प्रकार से प्रतिपादित होता है। अज्ञान का आश्रय यहाँ पर शब्द है। विषय ज्ञान तथा अज्ञान निराक्षय होकर नहीं रुकते हैं। इसलिए अविद्या माया पर्याय भूतों का आश्रय क्या होता है इस विषय में विचार करना चाहिए। अविद्य ा के आश्रयत्व तथा विषयत्व के विषय में भामती तथा प्रस्थान में मतभेद का विवरण है।

भामतीकार के मत में अविद्या का आश्रय जीव होता है। तथा निरूपाधिकब्रह्म में अविद्या रुकने योग्य नहीं है। अविद्या का विषय ब्रह्म ही होता है। जीव ही ब्रह्मस्वरूप को अपरोक्षता के कारण नहीं जानता है इस प्रकार के वाक्य से अविद्या का विषय जीव ही स्पष्ट रूप से होता है। इसलिए समन्वयाधिकरणभाष्य के विचारकाल में भामतीकार के द्वारा कहा गया है "नाविद्या ब्रह्माश्रया, किं तु जीवे, सा त्वनिर्वचनीयेत्युक्तम्, तेन नित्यशुद्धमेव ब्रह्म" इति। (अविद्या ब्रह्माश्रित नहीं होती है वह तो जीव में ही होती है तथा उसे अनिर्वचनीय इस प्रकार से कहा गया है। उसके द्वारा नित्य शुद्ध तो ब्रह्म ही कहलाता है।)

विवरणकार के मत में संक्षेप में शारीरिककार सर्वज्ञात्ममुने के मत में अज्ञान का आश्रय विषय ब्रह्म ही होता है। अज्ञान के ब्रह्माश्रयत्व में दोष नहीं होता है। तथा अज्ञान का और शुद्ध चैतन्य का विरोध भी नहीं है। ब्रह्म ही अज्ञान का अवभासक तथा साक्षी चैतन्य का अज्ञान भासकत्व इस प्रकार से अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा अङ्गीकार किया जाता है। जैस घर में विद्यमान तम घर का ही विषय होता है उसी प्रकार अविद्या भी ब्रह्माश्रित ब्रह्म का ही विषय होता है, इसप्रकार से यहाँ पर कोई अनुपपत्ति नहीं है। इसलिए विवरण कार के द्वारा प्रथम वर्णक में कहा गया है कि "न तावदज्ञानं आश्रयविषयभेदापेक्षम् किन्तु एकस्मिन्नेव वस्तुनि आश्रयत्वमावरणं चेति कृत्यद्वयं सम्पादयति" (अज्ञान आश्रय से तथा विषय भेद से अपेक्षित नहीं होता है अपितु एक ही वस्तु में आश्रयत्व तथा आवरण दोनों को सम्पादित करता है) इसलिए संक्षेप में शारीरककार के द्वारा कहा गया है

आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः॥ (सं.शा. 1.3.19) इति।

12.14) माया का जगदुपादानत्वविचार

ब्रह्म ही जगत् का निमित्त विवर्त तथा उपादान कारण होता है। माया को ही परिणामी तथा उपादानकारण के रूप में से पाठों में आलोचित किया गया है। लेकिन माया जगत् का उपादानत्व किस प्रकार से होती है इस विषय में अद्वैत वेदान्त के बहुत सारे विचार उपलब्ध होते हैं।

ध्यान दें:

पदार्थत्व निर्णयकारकों के मत के अनुसार "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" जिससे ये सभी भूत उत्पन्न हुए है "मायां तु प्रकृति विद्यात्" माया को प्रकृति समझना चाहिए इस प्रकार से दोनों प्रकार श्रुतियों के दर्शन से ब्रह्म तथा माया दोनों को ही जगत् के उपादान समझना चाहिए। इन दोनों में ब्रह्मजगत् विवर्तमानता के द्वारा जगत् का उपादान होता है तथा माया परिणाम मानता के कारण जगत् का उपादान है।

संक्षेप रूप में शारीरिककारों के मत में तो वह ब्रह्म ही जगत् का उपादान है। कूटस्थब्रह्म का स्वयं में उसके निर्गुत्व से तथा निर्विशेषत्व से स्वयं में कारण सम्भव नहीं होता है। इसलिए माया को ही द्वार कारण कहा जाता है। जिस प्रकार से द्वार अकारण होता हुआ भी कार्यों में अनुगत रूप से रुकता है उसी प्रकार माया भी प्रपञ्च मे अनुगत होती हुई रुकती है। यहाँ पर उदाहरण रूप में कह सकते है कि जिस प्रकार मृत्तिका ही घट का उपादान है, मृत्तिका के घटरूपता को प्राप्त होने पर उस में गये हुए लक्षण ही द्वारा कहलाते हैं। इसलिए संक्षेप शारीरिककार के मत में माया ही प्रपञ्च की उत्पत्ति में द्वार कारण है तथा उपादान ही ब्रह्म है।

वाचस्पति मिश्र के मत में माया जीवाश्रित रहती है। उस प्रकार की माया के द्वारा विषयीकृतब्रह्म स्वयं ही प्रपञ्च के रूप में दिखाई देता है। इसलिए ब्रह्म ही प्रपञ्च का उपादान है तथा माया सहकारी मात्र है, और द्वारकारणकार्यानुगत नहीं है।

वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली के लेखक प्रकाशानन्दस्वामी के मत में-

माया शक्ति ही जगत् का उपादान होती है न की ब्रह्म। क्योंकि ब्रह्म के कारणत्व श्रुतियाँ निषेध करती है 'तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमबाह्यम्' न तस्य कार्यं कारणञ्च विद्यते। इस प्रकार की श्रुतियाँ है। इसलिए जगद् की उपादानभूता माया का अधिष्ठानत्व ब्रह्मा में कारणत्व के रूप में देखा जाता है, ब्रह्म में जगत् की कारणता गौण होती है।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. शंङ्काराचार्य के मत में माया तथा अविद्या का भिन्नत्व है अथवा अभिन्नत्व?
2. विद्यारण्य स्वामी के मत में माया क्या है तथा अविद्या क्या है?
3. वाचस्पतिमिश्र माया का एकत्व तथा अनेकत्व किस प्रकार से स्वीकार करते हैं?
4. विवरणकार के मत में माया एक है अथवा अनेक?
5. अज्ञान का आश्रय तथा विषय किसे कहते हैं?
6. संक्षेप शारीरिककार के मत में माया किस प्रकार से जगत् की उपादान्त्व है?
7. वाचस्पतिमिश्र के मत में माया का जगद् उपादानत्व किस प्रकार का होता है?

पाठ सार

अद्वैत वेदान्त के मत में माया ही जगत् का कारण है। माया से उपहित चैतन्य ही ईश्वर है। ईश्वर मायाधीश होता है तथा माया को वश में करके जगत् का निर्माण करता है। वह माया श्रुति तथा स्मृतियों के द्वारा सिद्ध है। मानार्थ मा धातु से 'माछाससिभ्यो यः' इस सूत्र से य प्रत्यय करने पर तथा उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय करने पर माया शब्द सिद्ध होता है। जिसके द्वारा मापा जाता है, देखा जाता है, अपरोक्षवत् प्रदर्शित किया जाता है वहा माया है इस प्रकार के व्युत्पत्ति के दृष्टि से माया के अर्थ

ध्यान दें:

सम्भव होते हैं। अज्ञान अविद्या, प्रकृति, मिथ्याज्ञान तथा अव्यक्त इस प्रकार के अर्थ माया के पर्यायवाची हैं।

चित्सुखाचार्य के द्वारा प्रतिपादित माया का लक्षण- अनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वम् है। उत्तर ज्ञान के नाश होने पर पूर्वज्ञान में अतिव्याप्ति के वारण के लिए लक्षण में अनादिपद उपात्त होता है। ज्ञान के पूर्वभाव में अतिव्याप्ति के वारण के लिए भावरूपपद उपादान होता है तथा अनादि भावरूप आत्मा में लक्षण की अतिव्याप्तिनिवारण के लिए ज्ञाननिवर्त्यत्व उपात्त होता है। माया उत्पत्ति रहिता होती है। इसलिए वह अनादि है। माया अखिल जगत् का उपादान होती है। अभाव किसी का भी उपादान नहीं होता है। इसलिए माया भावरूप होती है। अनादित्व से तथा भावरूपत्व से माया को आत्मा के समान नित्य रूप में चिन्तन नहीं करना चाहिए। ब्रह्म के द्वारा ही उसकी निवृत्ति होती है। शुक्ति के उत्पत्ति होने पर उसका विषयी अविद्या की भी उत्पत्ति होती है। शुक्ति विषयक अविद्या ही तूलाविद्या तथा सादि कहलाती है। इसलिए तूलाविद्या में अविद्यालक्षण की अव्याप्ति हो तो ऐसा नहीं होता है क्योंकि शुक्तिरूपकल्पित उपाधि के कारण से ही यहाँ पर अविद्या का सादित्व कहा गया है। अविद्या स्वरूप से अनादि ही कही जाती है। अद्वैतसम्मत अनादि षट्क में अविद्या का परिगणन होता है। अविद्या के भावरूपत्व से उसका अभावरूपत्व निषेधार्थ ही कहा जाता है। वस्तुतः अविद्या भाव अभाव विलक्षणा तथा अनिवर्चनीया होती है। अविद्या के ज्ञान के निवर्त्यत्व में आत्मावान् शोक से तर जाता है इस प्रकार के श्रुतियों में प्रमाण प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से ज्ञानत्व के द्वार ज्ञाननिवर्त्यत्व होता है इस प्रकार का भी माया का निर्दिष्ट लक्षण प्राप्त होता सम्भव होता है। ज्ञानस्वरूप अज्ञान का ही निवर्तक होता है।

भ्रमोपादत्व इस प्रकार का अविद्या का दूसरा लक्षण मधुसूदनस्वामी के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। यहाँ पर परिणामित्व के द्वारा तथा अचेनत्व के द्वारा भ्रमोपादनत्व अविद्या के लक्षण का तात्पर्य है। उस चेतन से जगत के विवर्तकारणभूत आत्म में अतिव्याप्ति नहीं होती है। पूर्वाचार्यों के मतो को लेकर सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा अज्ञान के लक्षण के विषय में यह कहा गया है कि अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित् इति।

अविद्या ही अनिर्वचनीय कही जाती है। यदि अविद्या सत् हो तो वह बाध्य नहीं होती हो तथा असत् हो तो उसकी प्रतीति न ही हो। परस्पर विरुद्धधर्मी के एकत्र असम्भव होने से अविद्या के सत् तथा असत् दोनों ही नहीं होते हैं। इसलिए अविद्या तीन प्रकार की कोटि से विनिर्मुक्त अनिर्वचनीय कहलाती है। तथा सत्वरज् तथा तम इस प्रकार से यह त्रिगुणात्मिका भी होती है।

माया के सत्व में प्रत्यक्षादि बहुत सारे प्रमाण है। जिस प्रकार से मै अज्ञ हूँ, मुझको तथा दूसरे को नहीं जानता हूँ, इस प्रकार से प्रत्यक्षादि प्रमाण विवादगोचरापन्न प्रमाणज्ञान कहलाते हैं। ये स्वप्रागभावव्यतिरिक्त, स्वविषयावरण, स्वनिवर्त्य, स्वदेशगत, वस्त्वन्तरपूर्वकं होने योग्य है। अप्रकाशितार्थ के प्रकाशकत्व से अन्धकार में प्रथम उत्पन्न प्रदीप आदि के प्रभाव से, इस प्रकार अनुमान किये जाते है। "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इस प्रकार श्रुतियाँ माया के विषय में कहती है। ब्रह्म मे आरोपित मिथ्याभूत अहङ्कार का शुक्ति का में आरोपित मिथ्याभूतरजत का मिथ्याभूत कोई उपादान हो इस प्रकार की दृष्टार्थापत्ति होती है। जैस आत्मज्ञानी शोक को तर जाता है, इस प्रकार की श्रुतियों में आत्मज्ञानिवर्त्यत्व से मिथ्या ही बन्धहेतु शोकोपलक्षित अज्ञान श्रुतार्थापत्ति प्रमाण होते हैं जो माया के सत्त्व में प्रमाण होते हैं।

शङ्कराचार्य के द्वारा माया तथा विद्या में पर्याय शब्द को रूप में व्यवहार विहित है, लेकिन परवर्ति अद्वैतवादियों के द्वारा माया तथा विद्या में भिन्नता के द्वारा पारिभाषिकता से व्यवहार विहित है। किन्हीं के मत में माया ही ईश्वर की उपाधि है तथा अविद्या जीव की उपाधि है। कुछ फिर एक ही

ध्यान दें:

मूलप्रकृति को विक्षेपशक्ति के प्राधान्य से माया कहते हैं तथा आवरणशक्ति के प्राधान्य से अविद्या कहते हैं।

भामतीकार के मत में माया प्रत्येक जीव में भिन्न-भिन्न होती है, विवरणकार के मत में तो माया एक ही होती है। प्रत्येक जीव में एक अविद्या के ही अवस्था भेद देखे जाते है। भामतीकार के मत में माया का आश्रय जीव होता है तथा विषय ब्रह्म होता है। विवरणकार के मत में तो माया का आश्रय तथा विषय ब्रह्म ही होता है।

माया का जगदुपादानत्वविषय पदार्थतत्त्वनिर्णयकारों के मत में ब्रह्म ही विवर्तमानता से जगत् का उपादन है तथा माया परिणाममानता से जगत् का उपादान है। संक्षेप शारीरिककारों के मत मे माया ही प्रपञ्च की उत्पत्ति में द्वारकारण है। उपादान तो ब्रह्म ही है। वाचस्पति के मत मे माया ही सहकारिमात्र है न की ब्रह्म तथा कार्यानुगत द्वारकारण नहीं होता है। प्राकशानन्द के मत में तो माया शक्ति ही जगत् का उपादान है न की ब्रह्म। ब्रह्म की जगत् कारणता माया के अधिष्ठानत्व से गौण ही होती है।

आपने क्या सीखा

- माया की आलोचना को जाना,
- माया के शब्दार्थ को जाना,
- तत्त्वप्रदीपिका द्वारा माया के लक्षण को जाना;
- माया का संपूर्ण संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया।

पाठान्त प्रश्न

1. माया शब्द के व्युत्पत्ति के द्वारा प्राप्त होने वाले अर्थ कौन-कौन से है?
2. चित्सुखाचार्य के द्वारा कहा गया अविद्यालक्षण प्रतिपादक श्लोक कौन-सा है?
3. अनादिसत्व में ज्ञान का निवर्त्यत्व होता है इस अविद्या के लक्षण की ज्ञान प्राग के अभाव में किस प्रकार अतिव्याप्ति होती है?
4. अनादिष्टप्रतिपादक श्लोक कौन-सा है?
5. किस प्रकार से अज्ञान घटादि विशेष ज्ञान अभाव वाला होता है?
6. अविद्या के भावरूपत्व को किस प्रकार से अङ्गीकार नहीं कर सकते हैं?
7. अविद्या यहाँ पर नञ् समास का क्या अर्थ है?
8. सोपाधिक भ्रमस्थलों में ज्ञानोदय काल में अज्ञान की किस प्रकार से निवृत्ति होती है?
9. अविद्या की त्रिगुणत्व प्रतिपादक श्रुतियाँ कौन-कौन सी है?
10. अद्वैत वेदान्त में अभाव की किस प्रमाण से प्रत्यक्षता अङ्गीकार की जाती है?
11. विवरणकार के मत में मूल विद्या के एकत्व से एक के ज्ञान के द्वारा सभी मुक्ति किस प्रकार से नहीं होती है?
12. संक्षेप शारीरककार के मत में माया का आश्रय विषय क्या है?

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 12.1

1. जगत् के जडत्व के कारण चेतनब्रह्म के अतिरिक्त द्वितीय के अभाव से जगत् के उपादान के रूप मे माया को ही अङ्गीकार किया जाता है।
2. मायं तु प्रकृति विद्यात्, इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते इत्यादि श्रुतियों में माया के विषय में प्रमाण है।
3. अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, मिथ्याज्ञान, अव्यक्त, अव्याकृत, महासुषुप्ति, अक्षर इत्यादि माया के पर्यायवाची शब्द होते हैं।
4. माया की सिद्धि में माया को, मम माया दुरत्यया नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः, अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः, इस प्रकार के स्मृतियों के प्रमाण है।
5. मानार्थक मा धातु से माछाससिभ्यो यः इस सूत्र से य प्रत्यय करने पर तथा उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् करने पर माया शब्द की सिद्ध होती है।
6. अनादि ज्ञान निवर्त्य में ज्ञान प्रागभाव में अतिव्याप्ति निवारण के लिए है।
7. अनादिभावरूपत्व होने पर ज्ञाननिवर्त्यत्व होता है।
8. उत्तर ज्ञान के नाश के लिए तथा पूर्वज्ञान में अतिव्याप्ति के वारण के लिए, अथवा उत्तर ज्ञान नाश के पूर्वज्ञान के भाव रूपत्व से तथा ज्ञान निवर्त्यत्व से वहाँ पर लक्षण की अतिव्याप्ति द्वारा होती है।
9. जीवः, ईश्वरः, शुद्धचौतन्यम्, जीवेशयोर्भेदः, अविद्या, अविद्या-चैतन्ययोः सम्बन्धः, इस प्रकार छः सम्बन्ध अद्वैतवाद में अनादि पदार्थ के रूप में अङ्गीकार किये गये है।
10. मूलाविद्या ब्रह्माश्रित जगत् का कारण तथा ब्रह्मस्वरूप आच्छादिका होती है और तूलाविद्या शुक्त्यादिपरिच्छिन्न भ्रमर जाति आदि हेतु के रूप में होती है
11. अज्ञान अपने कार्य जडशुक्ति का आश्रय लेकर के नहीं रुकता है। शुक्त्यवच्छिन्न चौतन्य ही अज्ञान का विषय है। शुक्ति तो अज्ञान की अवच्छेदिका है।
12. अनादि भावरूप आत्मा में अतिव्याप्तिवारण के लिए है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 12.2

1. अविद्या के भावरूपत्व का तात्पर्य तो अभाव विलक्षण ही होता है।
2. अविद्या के अभावरूपत्व में जगत का उपादान, अभाव से भाव की होने से शङ्करता के कारण सौ प्रकार दूषित होने के कारण अविद्या नहीं होती है।
3. वस्तुतः अविद्या न तो भाव रूप है और न अभाव रूप। अविद्या तो भाव अभाव विलक्षण होती है।
4. अविद्या यहाँ पर नञ् समास का विरोधित्व अर्थ है, इसलिए अविद्या का अर्थ यहाँ पर विद्या की विरोधी तथा विद्या की निवर्त्या है।

ध्यान दें:

5. तरति शोकमात्मवित्, तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति इत्यादिश्रुतयः अविद्याया के ज्ञाननिवर्त्यत्व में प्रमाण है।

6. अविद्या के लक्षण में ज्ञाननिवर्त्यत्व पद का साक्षात् ज्ञाननिवर्त्यत्व तात्पर्य है।

7. ज्ञान ही ज्ञानत्व से अज्ञान का निवर्तक होता है।

8. भ्रमोत्पादनत्व ही माया का अपर लक्षण है।

9. ब्रह्म में अतिव्याप्ति होती है, इसलिए लक्षण में परिणामित्व अचेतनत्व से यह पद जोड़ना चाहिए।

10. शुक्तिरजतोत्पत्ति का अभाव होने पर भी शुक्ति विषय अज्ञान में भ्रमोपादनत्व स्वरूपयोग्यता के विद्यमानत्व से फलोपधायकत्व का अभाव होने पर भी भ्रमोपादनत्व सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 12.3

1. अज्ञान जो कुछ भी होता है वह सद् असत् से अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक ज्ञान विरोधी भावरूप होता है।

2. अज्ञान ही ज्ञान के द्वारा बाधित होता है, इसलिए सत् नहीं होता है तथा अज्ञान की जगत् के आकार से प्रतीति होने के कारण वह खरगोश में पुँछ के समान असत् भी नहीं है।

3. अज्ञान का सद्भिन्नत्व से असत् भिन्नत्व से सदसत्भिन्नत्वसे तथा सद् असद् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीयत्व होता है।

4. लोहितशुक्लकृष्ण ये अविद्या के गुण होते हैं। कुछ लोग सत्व रज तथा तम को यहाँ गुण के रूप में मानते है।

5. मैं अज्ञ हू, मैं मुझे नहीं जानता हूँ। इस प्रकार के प्रत्यक्ष अनुभव ही माया के प्रमाण होते है।

6. विवादगोचरापन्न प्रमाणज्ञान कहलाते है। ये स्वप्रागभावव्यतिरिक्त- स्वविषयावरण- स्वनिवर्त्य- स्वदेशगत- वस्त्वन्तरपूर्वकं होने योग्य है। अप्रकाशितार्थ के प्रकाशकत्व से अन्धकार में प्रथम उत्पन्न प्रदीप आदि के प्रभाव से, इस प्रकार अनुमान किये जाते है। इस ज्ञान से समानाश्रयविषय भावरूप अज्ञान की सिद्धि होती है।

7. देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्, मायां तु प्रकृतिं विद्यात्, तरत्यविद्यां विततात्, तम आसीत् तमसा गूढम्, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम् इत्यादि श्रुतियाँ माया कि सिद्धि में प्रमाण होती है।

8. ब्रह्म में आरोपित मिथ्याभूत अहङ्कार की शुक्ति का में आरोपित मिथ्याभूतरजत का मिथ्याभूत ही कोई उपादान हो। मिथ्याभूतरजत के उपादान रूप से अहङ्कार उपादान से अज्ञान की कल्पना होती है।

9. आत्मज्ञानी शोक से तर जाता है। इस प्रकार की श्रुतियों मे आत्मज्ञान निवर्त्यबन्ध हेतु के शोकोपलक्षित अज्ञान की सिद्धि मे शोकतरण का अनुपपद्यमानत्व से श्रुतार्थापत्ति के द्वारा भी अज्ञान की सिद्ध होती है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 12.4

1. शङ्कराचार्य के मत में माया तथा अविद्या में अभिन्नता ही होती है।
2. विद्यारण्यस्वामी के मत में रज तम दोनों से अभिभूत शुद्धसत्त्वप्रधान ईश्वर की उपाधि ही माया है तथा रज, तम के द्वारा अभिभूत मलिनसत्त्वप्रधान जीव की उपाधि ही अविद्या है।
3. वाचस्पति मिश्र माया के एकत्व को अङ्गीकार करते हैं।
4. विवरणकार के मत में माया एक ही है।
5. भामतीकार के मत में ब्रह्म ही जगत् का उपादान होता है तथा माया द्वारकारण होती है।
6. ब्रह्म ही जगत का उपादान है।
7. वाचस्पतिमिश्र के मत में माया सहकारी मात्र होती है तथा ब्रह्मप्रपञ्च का उपादान होता है।